अ‍ॅकॅडमी ऑफ थिएटर आर्टस्
मुंबई विद्यापीठ,
१ ला मजला, सांस्कृतिक भवन,
हंस भुंग्रा रोड,
मुंबई विद्यापीठ उत्तर गेट समोर,
सांताक्रुझ-चेंबुर लिंक रोड,
सांताक्रुझ (पूर्व), मुंबई - ४०० ०५५.
भ्रमणध्वनी नं.- ९०८२७१५४१४

University of Mumbai

RE-ACCREDITED A++ GRADE
(CGPA 3.65) BY NAAC

ACADEMY OF THEATRE ARTS
UNIVERSITY OF MUMBAI,
1st Floor, Sanskrutik Bhavan,
Hans Bhungra Road,
Opp. North Gate University of Mumbai,
Santacruz - Chembur Link Road,
Santacruz (East), Mumbai- 400 055.
Mobile No. : 9082715414
Email : ata@mu.ac.in

A.T.A./M.U./129 /2024
Date:- 03rd July,2024

Dear Candidate,

Kindly refer to your application for admission to the **Diploma in Acting Skills one year course** which is conducted by the Academy of Theatre Arts, University of Mumbai.

It gives me immense pleasure in informing you that your application is scrutinized and you are selected for the audition which is scheduled on **11th July, 2024 at 9.00 a.m.** onwards at the Academy of Theatre Arts, University of Mumbai, 1st Floor, Sanskrutik Bhavan. Hans Bhugra Road, Opp. North Gate University of Mumbai, Santacruz – Chembur Link Road, Santacruz (East), Mumbai: – 400 055.

You are requested to remain present in time & **report at 8.30 a.m. on 11th July, 2024** at above address. Please come prepared for audition.

It is compulsory to attend audition. We will select candidate on above mention tests. You are requested to make your all arrangements during the stay in Mumbai on above dates.

Wish you all the best,

Shri. Yogesh Soman
I/C DIRECTOR
Academy of Theatre Arts
University of Mumbai

Academy of Theatre Arts
University of Mumbai
Diploma in Acting Skills
Academic Year 2024-2025

AUDITION

On 11th July, 2024 at 9.00 a.m. onwards

Venue

1st Floor, Sanskrutik Bhavan, Hans Bhugra Road, Opp. North Gate University of Mumbai, Santacruz – Chembur Link Road, Santacruz (East), Mumbai – 400 055.

Audition (Performance test) is organized to understand the talent, capacity and possibilities of candidate.

(A) Audition (Performance Test):

- Candidate is expected to come prepared with followings:

(a) Enactment of a soliloquy (swagat) in mothertongue.
(b) One soliloquy in Hindi/Marathi provided by the Academy of Theatre Arts, University of Mumbai.
(c) One stanza of any song+ one small sequence of dance and movement.
(d) One poetry enactment from any language OR provided by the Academy of Theatre Arts, University of Mumbai.
(e) Candidate can show his/her other skills like playing music instruments, magic items, martial art items, puppetry items etc.
(f) Candidate is allowed to present his design work, sketches, models, costume plates, drama scripts, production scripts, production scripts, painting, handicraft items etc
(g) The Performance has to be done based on the Script sent by Academy of Theatre Arts. (Please see attachment.)
(h) Candidate is expected to bring original certificates at the time of interview.

Mumbai

Date: 03/07/2024

Shri. Yogesh Soman
I/C DIRECTOR
Academy of Theatre Arts

नाटक - दुश्मन और दुश्मन एक प्रेम कहानी

लेखक - महेंद्र भल्ला

पात्र - शन्नो देवी

तूने यह सब नहीं देखा क्योंकि तू उस दिन बड़े बुखार में बिस्तर पर बेहोश-सा पड़ा था। बाद में बात तुझे बताई नहीं गई। तुझे ही क्या लड़कियों को भी। तुम लोगों को बस यही मालूम हुआ, बाद में, पहले बाहर वालों से फिर हमसे कि उस दिन मुसलमानों ने हमारे घर पर घेरा डाला हुआ था- (थोड़ा रुककर)
जिस कोठरी में तू बीमार पड़ा था उसी कोठरी में तमाम बच्चे - तेरी तीनों बहनें, तेरी दादी मुंबई से आई हुई तेरी छोटी बुआ और उसके बच्चे। मैं तेरी चाची विमला, सरला और मुन्नी बाहर भी आदमी लोगों की मदद के लिए जो ऊपर मुंडेरों और खिड़कियों पे तैनात थे। उन्हें ईंट पत्थर-बीच वाला मुंडेर तोड़ दिया गया था-और घर की तरह-तरह की चीजें लोटे, कड़ाइयाँ, पतीले, गिलास वगैरह सब के सब मुंडेरों के पास जमा किए जा रहे थे।
बाहर उन्होंने घेरा डाला हुआ था। बीच-बीच में अल्लाह-हू-अकबर की आवाजें आ रही थी। कुछेक मुसलमान वो थे जो खासे जाने-पहचाने थे। यों तो सभी अपने कस्बे के थे।
आदमी लोग हमारे नौकरों के साथ छत पर मुंडेरों पर जगह-जगह खड़े थे। तेरे पिताजी और चाचा के पास बंदूकें थीं और वे नीचे बैठक की खिड़कियों में आड़ लेकर खड़े थे।
हम लोग मकान के आगे और पीछे झाँकते जाते थे बीच-बीच में। न आगे से न पीछे से घर से निकल भागने का कोई रास्ता नहीं था।
वे लोग आगे के दरवाज़े से ही अन्दर आ सकते थे क्योंकि पीछे के रास्ते को हम लोगों ने नौकरों द्वारा गेहूँ की बोरियों से बंद करा दिया था। फ़ैसला यह हुआ था कि खूब डट के मुक़ाबला करेंगे - मतलब कि जैसे ही रेडियो पर, जो हमारी बैठक में चल रहा था, यह ख़बर जाएगी कि हमारा हिस्सा पाकिस्तान में आ गया है, वैसे ही वे लोग हम पर हमला बोल देंगे और वैसे ही हम लोग - मतलब कि आदमी लोग - छत से ईंटों पत्थरों की बौछार शुरु कर देंगे। दरवाज़े को जो वैसे ही बड़ा मजबूत था, किसी किले के दरवाज़े की तरह, पूरी से पूरी कोशिश करके बचाएँगे। मगर वो लोग इतने ज़्यादा थे और उनके पास बर्छे वगैरह भी थे कि वे दरवाज़े को तोड़ने में कामयाब हो सकते थे। इसलिए यह तय हुआ था कि जैसे ही दरवाज़ा तोड़ कर वो लोग सीढ़ियों से ऊपर आने लगेंगे वैसे ही सब आदमी लोग ऊपर से नीचे आकर उनका मुक़ाबला करेंगे। (यहाँ वह कुछ कह सकती है)
मगर जैसे ही मुझे ऐसा लगेगा - यह सारी ड्यूटी मेरी थी और तेरी चाची की-कि वो लोग अब ऊपर आ रहे हैं आदमी लोगों को मार कर (यहां उसकी आवाज़ थोड़ा झंपती है।) कि हमें लगेगा कि हमारा खेल अब ख़त्म हो रहा है तो मैं और तेरी चाची विमला, सरला और मुन्नी को भी उसकी कोठरी में घुसा देंगी और दरवाज़ा बंद कर देंगी यों उस पर कुंडी नहीं लगाएगी। फिर हम दोनों मिलकर - यह बात हमने तुम लोगों से खास तौर पर छिपा के रखी है-मिट्टी के तेल का कनस्तर लाएँगी और आधा तेल कोठरी के दरवाजे पर उँड़ेलेंगी और बाकी दरवाज़े के अंदर

नाटक - बाण भट्ट की आत्मकथा

लेखक - अमिताभ श्रीवास्तव

पात्र - महामाया

(तीव्र स्वर में) आर्य सभासदों, आप यह न समझें कि मेरे गुरु का अपमान किया गया है, इसलिए मैं क्षुब्ध हूँ। अवधूतपाद मान और अपमान के परे हैं। परन्तु मैं महाराजाधिराज से प्रार्थना करने के निर्णय का विरोध करती हूँ। आचार्य भर्बुपाद के पत्र के फलितार्थ पर आपने विचार किया होता, तो ऐसा निर्णय नहीं करते! वह पत्र पौरुषहीनता का नग्न प्रचारक है। और आपका निर्णय उसी मनोवृत्ति का पोषक है। आप कहें कि उत्तरापथ के

ब्राह्मण और श्रमण, वृद्ध और बालक, बेटियाँ और बहुएँ किसी प्रचण्ड नरपति-शक्ति की छाया पाए बिना नहीं बच सकतीं। आर्य सभासदों, उत्तरापथ के लाख-लाख नौजवानों ने क्या कंकण-वलय धारण किया है? क्या वे वृद्धों और बालकों, बेटियों और बहुओं, देवमन्दिरों और विहारों की रक्षा के लिए अपने प्राण नहीं दे सकते ? आचार्य भर्युपाद का पत्र पढ़कर मेरा कण्ठ रोष और लज्जा से सूख आता है। अगर देवपुत्र तुवरमिलिन्द का हृदय थोड़ा भी संवेदनशील होता, तो आज से बहुत पहले उन्हें मूच्छित होकर गिर पड़ना था। क्या निरीह प्रजा की बेटियाँ उनकी नयन-तारा नहीं हुआ करतीं? क्या राजा और सेनापति की बेटियों का खो जाना ही संसार की बड़ी दुर्घटनाएँ हैं। इस उत्तरापथ में लाख-लाख निरीह बहुओं और बेटियों के अपहरण और विक्रय का व्यवसाय चल रहा है। और इस घृणित व्यवसाय का प्रधान आश्रय सामन्तों और राजाओं के अन्तःपुर हैं? आपमें से किसे नहीं मालूम कि महाराजाधिराज की चामरधारिणियाँ और करंकवाहिनियाँ इसी प्रकार भगाई हुई, ख़रीदी हुई कन्याएँ हैं ? क्या इन अभागिनियों के पिता नहीं थे ? क्या वे अपनी माओं की नयन- ताराएँ नहीं थीं ? धिक्कार है आर्य सभासदों, जो उत्तरापथ के विद्वान और शीलवान् नागरिक इन राजाओं का मुँह जोह रहे हैं। अमृत के पुत्रों, मृत्यु का भय माया है।

<u>नाटक - बाण भट्ट की आत्मकथा</u>

<u>लेखक - अमिताभ श्रीवास्तव</u>

<u>पात्र - निपुणिका</u>

मदनश्री के घर से निकलते समय मैंने बालकभेष धारण कर लिया था। तुम्हारे आवास पर गई, तो पता लगा कि तुम मेरी खोज में निकले हो और दण्डधारकों के साथ शार्विलक के अड्डे पर भी जाओगे। उज्जयिनी छोड़ने से पहले, बस एक बार मैं तुम्हारे दर्शन करना चाहती थी। मैं शार्विलक की दुकान की तरफ़ चल पड़ी। रास्ते में शकद्वीप का एक ब्राह्मण ज्योतिषी मिल गया। मुझे देखते ही वो बोला- 'आ बेटा तेरा भाग्य गिन दूँ।' एक दीनार के बदले में उसने कहा-तेरा भविष्य अच्छा है, पर तुझे दुःख भोगना है।' मैंने पूछा "मैं जिससे भेंट करने जा रहा हूँ, उसके विषय में कुछ बताओ", कुछ देर गणना करने के बाद उसने कहा- 'वो बड़ा यशस्वी कवि होगा, परन्तु कोई भी रचना समाप्त नहीं कर सकेगा।' मैंने पूछा, 'कोई बचने की विधि है क्या आर्य ?' कुछ देर वो अपने खींचे चक्र आदि को देखता रहा फिर बोला 'बच सकता है, बस वो किसी जीवित व्यक्ति के नाम पर काव्य न लिखे।' उस दिन जब तुमने भट्टिनी के बारे में कविता लिखने की बात कही, तो मेरा चित्त काँप उठा।

<u>नाटक - बाण भट्ट की आत्मकथा</u>

<u>लेखक - अमिताभ श्रीवास्तव</u>

<u>पात्र - भट्टिनी</u>

भट्ट, मुझे बहुत पहले मर जाना चाहिए था। जिस दिन नगरहार के मार्ग में प्रत्यंत दस्युओं ने मुझ पर आक्रमण किया, उस दिन चुने हुए दो सौ विश्वस्त सेवक मेरी पालकी के साथ थे। पितामह के समान पूज्य और परमवीर धीर नापित मेरे साथ था। डाकुओं ने एकाएक आक्रमण किया। धीर नापित अंत तक मेरे ऊपर छत्र की भाँति छाया रहा। मेरे दो सौ वीर, देवपुत्र का नाम ले-लेकर लड़े, जब तक उनके शरीर में रक्त की एक बूँद भी बची, उन्होंने किसी भी दस्यु को मेरी पालकी के पास भी नहीं फटकने दिया। मैं हृदय पर पत्थर रखे, त्राहि-त्राहि करती अपने विश्वस्त सेवकों का मरण-दृश्य देखती रही। धीर नापित तब भी गला फाड़कर देवपुत्र का

जय-निनाद करता रहा। मरते समय तक यही कहता रहा - 'निर्भय रहो बेटी, ये पापी तुम्हारी छाया भी नहीं छू सकेंगे।' पचासों दस्यु उस पर चींटी की तरह चढ़ दौड़े। उन्होंने धीर के वस्त्र-केश नोंच डाले, लेकिन वो पालकी से नहीं हटा, उसके रक्त से मेरी पालकी भीग गई। फिर अंतिम बार उसने चिल्लाकर कहा- 'निर्भय रहो बेटी।' मैं अपने को सँभाल न सकी। जब तक मैं बाहर निकल कर उसे पालकी के भीतर खींचती-उसके शरीर के तीन खण्ड हो चुके थे, मुझ अभागी को उसके चरण ही मिले। मैं कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ी। क्यों भट्ट, मैं उसी समय मर क्यों नहीं गई ?

<u>नाटक - दिव्या</u>

<u>लेखक - मीरा कांत</u>

<u>पात्र - दिव्या</u>

(स्वगत) आज से चौथे दिवस पृथुसेन सेना लेकर समर को प्रस्थान करेंगे। आह! रक्त की नदियाँ, घायलों का चीत्कार, सैनिकों का भूमि पर बिछ जाना (घबराकर) और पृथुसेन अपने वेगवान अश्व पर उसी नरमेध में धँसे चले जाएँगे। नहीं... ऐसा नहीं हो सकता.
(उठकर बाल संवारने की कोशिश करती है। फिर बिस्तर ठीक करती है। हाथों को देखती है।)
क्या करूँ ? हाथ निर्दिष्ट कार्य में यंत्र की भाँति लगे रहने पर भी कल्पना में युद्ध के दृश्य क्यों क्यों आह! चंचल श्वेत अश्व पर उठी हुई भुजा में खड्ग थामे पृथुसेन संकट की ओर वेग से झपट रहे हैं रोको ... रोको पृथुसेन पृथुसेन रुको पृथुसेन रुको (सिहर जाती है।) अपने प्रासाद में कितने क्लांत थे आज पृथुसेन ! उस पर मेरी वर्जना आश्रय में कुछ विश्रांति होकर युद्ध स्थल में जाएँगे शरीर नहीं नहीं कुछ संतोष ही तो चाहा था उन्होंने आह... मेरे क्या वे यूँ ही क्षुब्ध और वहाँ से यदि न लौटे ? यदि उनका निर्जीव (शांत होकर) तो मैं भी नहीं बचूँगी ... यदि पुनर्जन्म है तो हम दोनों पुनः जन्म लेकर अमर प्रणय में बँधेंगे। परंतु बौद्ध भिक्षु तो कहते हैं ... कहते हैं... मन की उग्र इच्छाएँ ही मनुष्य के वे संस्कार हैं जो मृत्यु को पीड़ामय बना देते हैं। तो क्या आर्य की विह्वलता यह इच्छा यूँ ही अतृप्त नहीं ... मेरा शरीर अब आर्य का है, मेरा मन आर्य का है, मेरी आत्मा आर्य की है। वही संसार में मेरे सबसे अधिक अपने हैं। मैं उन्हें व्याकुल क्यों देखूँ? मेरा सर्वस्व उन्हीं का है। उन पर मैं अपना परिवार, समाज और संपूर्ण अस्तित्व न्यौछावर कर सकती हूँ... तो समस् यात्रा से पूर्व ही क्यों नहीं? उदूँ... केवल आज की संध्या शेष है... मुझे भी एक विजय-यात्रा के लिए प्रस्तुत होना है आत्मसर्मपण की विजय यात्रा, दिव्या का आत्मसर्मपण।

<u>मूल नाटक - ***Enemy of the people***</u>

<u>नाटक - दश चक्र</u>

<u>मूल नाटककार - ***Henrik Ibsen***</u>

<u>हिंदी अनुवाद - नेमीचंद्र जैन</u>

<u>पात्र - राधा</u>

बताता हूँ। देखिए, इस बस्ती को मुख्य बनानेवाले जो लोग हैं उनमें हमारे अमलेन्दु बाबू ही हैं। ये लोग श्रद्धा के पात्र हैं, और देखिए वे लोग अगर ज़मीन बेचने के बजाय किराए पर उठाते तो उतना रुपया नहीं मिलता। ये लोग अगर ज़मीनों के बीच-बीच में मानों सड़कें न बना देते तो छोटे-छोटे प्लाटों की बिक्री नहीं होती - इसका मतलब है दाम कम मिलता। अब देखिए वे रास्ते अपने पास रहने से उनकी मरम्मत वगैरा का खर्च होता है। इसीलिए उन्हें चुंगी को दान कर दिया। अब खर्च देते हैं हम लोग टैक्स द्वारा, और खर्च करते हैं वे लोग अधिकारी बनकर । उन लोगों ने नल इसलिए लगाया कि जमीन बिकेगी। पर इसे चुंगी को दान नहीं किया गया, क्योंकि इससे आगे खर्च की बजाय मुनाफे की संभावना बहुत अधिक थी। पर पानी का नल तो हमारे जीवन का प्राणकेन्द्र है। साहब, मुझे किरायेदार मिलते हैं उसी के बल पर। फिर देखिए किरायेदार मिलते हैं इसलिए अमूल्यशाह की मोदी की दुकान चलती है। फिर देखिए खा-पीकर लोग ज़िन्दा रहते हैं इसीलिए तो किताब पढ़ते हैं, अखबार पढ़ते हैं, ब्याह की कविताएँ लिखते हैं, इसी से तो मेरा प्रेस चलता है। आप समझ नहीं रहे हैं डा. गुहा ?

नाटक - थिफ ! पोलिस

लेखक - विजय तेंडुलकर

पात्र - प्रोडक्शन मैनेजर

ये है हमारी कास्ट-यानी हमारे अभिनेता और अभिनेत्रियाँ। बिट रोल्स, छुटकर-फुटकर रोल में ख़ुद करता हूँ। (अब आगे सरक, अपनी पोजीशन लेकर) और ये है हमारा सेट-बिल्कुल अपटुडेट! यानी मॉडर्न सिम्बॉलिक (समझाता हुआ) बात ये है कि नाटक की वेन... यानी नस... कुछ डिफरेंट है... यानी ऊटपटाँग है... इसलिए ये सेट भी आपको कुछ डिफ़रेंट नज़र आयेगा... यानी जो कुछ ये दीख रहा। ये वो नहीं है, और जो नहीं दीख रहा है, ये वो है... (इशारा करता है) समझ लीजिये, ये बॉम्बे-पूना जनता एक्सप्रेस का एक कम्पार्टमेंट है। इस सेकेंड क्लास में (एक अभिनेता की ओर इशारा कर) ये हैं एक कैपिटलिस्ट यानी पूँजीपति साहब ।... (पूँजीपति का अभिनय करने वाले कलाकार अपने सामने से अख़बार हटाकर दर्शकों को अपनी शक्ल दिखलाते हैं।)... वो है एक बेकार लड़का। (लड़का जेब से रंगीन रूमाल निकालकर गले में बाँधता हुआ, दर्शकों की ओर अपना सिर हिलाता है।) वो हैं हमारे कामरेड भाई ।... उस तरफ़ दो मुसाफ़िर रमी खेल रहे हैं।... वो हैं एक सोसायटी लेडी ।... और ये जो कुमारी हैं न, ये है श्रमिक महिला, यानी नौकरीपेशा लड़की... और हाँ, वो एक कोने में बक्स पर जो साहब विराजमान हैं, वो हैं एक पेंशनर... लगता है, उनकी कमर काम नहीं करती... देखिए न, कैसे उकड़ें बैठे हैं...।
गाड़ी अभी कर्जत स्टेशन को छोड़ चुकी है और पूना की ओर जा रही है... वैसे आज गाड़ी में भीड़ कुछ कम है... (सोचता हुआ) अच्छा, अब और क्या बाक़ी रहा है? (एकदम याद आ जाता है)
हाँ, टनेल (समझाते हुए) टनेल माने सुरंग... माने वोगदा, जिसमें से होकर गाड़ी जाती है- (ऊपर लाइट्स की ओर देखता है। इशारा करने के लिए ताली बजाता है) अरे नत्थू, यह लाइट्स। ...इधर यहाँ इफ़ैक्ट। ये सुरंग आई (रंगमंच पर लाइट्स बुझ जाती हैं) ये सुरंग गई- (रंगमंच पर लाइट्स फिर आ जाती हैं) अब ये दूसरी टनेल आई- (लाइट्स फिर बुझती हैं)... और ये गई... (लाइट्स फिर आ जाती हैं)... ये फिर एक टनेल आई... (लाइट्स बुझती हैं) और ये गई- (लाइट्स फिर आ जाती हैं) बस, अब ठीक है। (दर्शकों की ओर मुड़) तो साहब, मैं कह रहा था कि गाड़ी सुरंगों में से होकर सनसनाती हुई आगे पूना की तरफ़ बढ़ी जा रही है। (मुँह से सीटी बजा, छक-छक-छक करता विंग में चला जाता है। कुर्सियों पर बैठे कलाकार, रेल में बैठे मुसाफ़िरों की तरह हिलने लगते हैं।)
[प्रोडक्शन मैनेजर अंधे भिखारी का अभिनय करता हुआ, टटोलता रंगमंच पर प्रवेश करता है।]

नाटक - न्याय अन्याय

लेखक - सपन ज्योति ठाकूर

पात्र - विकास

यही सब। मैं कहूँगा कि मैंने लड़के की मदद नहीं की। क्यों कहूँगा? मैंने मदद की है और मदद करना अच्छी बात है। आई हेल्प टू लवर्स। मैं इसे नेक काम समझता हूँ। नेक काम समझता हूँ मैं। वे मेरा फैसला करेंगे। और मुझे ख़ुद को बेगुनाह साबित करना होगा। छीः यह सब काम मैं नहीं कर सकता। मैं इसे ही बुरा काम समझता हूँ। मैं बेगुनाह हूँ। वैसा करने के बाद भी मैं मानता हूँ कि मैं बेगुनाह हूँ। वैसा झूठ बोलकर बचने की वजह क्या है? नहीं, नहीं होगा, नहीं होगा। मैं इस तरह का झूठ बोलनेवाला नहीं हूँ। क्या तुम मुझे झूठ बोलने की इजाज़त दोगी ? कहो, दोगी ? किसी से नहीं पूछता। तुमसे पूछता हूँ। तुमसे। क्यों पूछ रहा हूँ जानती हो ? मैं तुम पर

भरोसा करता हूँ। शायद अपने मामले में धरती पर पहली बार मैं भरोसा शब्द का इस्तेमाल कर रहा हूँ। भरोसा नहीं और चीज़ पर मेरा भरोसा नहीं है। दोष, त्रुटि, जन्म, मृत्यु, ईश्वर, भगवान किसी चीज पर भरोसा नहीं है। मुझे। किसी वजह से मैं तुम पर भरोसा करने लगा हूँ। हा, तुम पर भरोसा करने लगा हूँ। मैंने अंतर के एक-एक छिलके को उतारकर खुद से पूछा है। पूछने पर एक ही जवाब मिला है- भरोसा। तुम पर भरोसा। शायद इसी भरोसे का दूसरा नाम प्रेम है। मोहब्बत। मैं इश्क करने लगा हूँ तुमसे। दो मुझे अपना प्रेम दो। मैं भीख माँग रहा हूँ। दो, नहीं तो धरती पर मुझे किसी चीज पर यकीन नहीं है। भरोसा नहीं है। दोगी? मुझे अपने प्रेम की भीख दोगी ? (संध्या विकास के सिर पर हाथ रखती है)

<u>नाटक - दुश्मन और दुश्मन एक प्रेम कहानी</u>

<u>लेखक - महेंद्र भल्ला</u>

<u>पात्र - चन्दर</u>

(कुछ अपने से, कुछ दर्शकों से) ऐसा नहीं है कि मैंने कोशिश नहीं की। मैंने की। की। और करता भी रहता हूँ। न करने का सवाल ही पैदा नहीं होता क्योंकि मेरे दिमाग़ में गुस्सेवाली यह बात घुसी हुई है कि मात्र एक लड़की मेरी सारी जिंदगी ख़राब नहीं कर सकती। बरबाद नहीं कर सकती। कि मैं ऐसा नहीं होने दूंगा। कई बार, उसका ख्याल आने पर मैं उसे दबाने में सफल भी हो जाता हूँ। मगर क्योंकि मैं उसे भुलाने में सफल नहीं हुआ हूँ। इसलिए लगता है मैंने पूरी कोशिश नहीं की।दो बातों पर मेरा बस अक्सर नहीं चलता। अभी नहीं। कभी कोई ऐसी लड़की या जवान औरत दिखाई दे जाए जिसका चेहरा या देह-यष्टि या उसका कोई भी अंग, बाह, हाथ, कंधे, गर्दन, गाल, आँखें, होंठ वगैरह - चम्पा से काफ़ी मिलते हों या जिसकी हँसी या देखने, उठने-बैठने, चलने या बात करने का अंदाज़ उसके जैसा हो या कोई प्रेमी युगल दिखाई दे जाए (प्रेमी युगल दिखाई दे जाने पर हमेशा-हमेशा ऐसा होता है) तो मेरे दिल की धड़कन एकाएक तेज़ हो जाती है- मैं सँभल भी नहीं पाता, मानो धड़कन पहले होती हो और पूरी बात बाद में समझ में आती हो। तब मेरे मन में हमेशा यह बात आती है कि जीवन का मतलब सिर्फ़ चम्पा के साथ हो सकता था, सिर्फ़ उसी के साथ कि उसके बगैर जीवन बेकार है। एकदम बेकार। तब दिल के भीतर से एक घनघोर और असहय सूनेपन का बुल्ला उठता है जो मुझे बुरी तरह से दबोच लेता है। ऐसे मौक़ों पर कई बार मैं मन ही मन बरबस रो भी पड़ता हूँ। [रुंआसा हो जाता है। क्षण-भर चुप रहता है।] दूसरे, मेरे भीतर हमारे नौ साल के सम्बन्ध वाली एक स्थायी और ऐसी लचीली फ़िल्म है जिसकी रील कभी भी, किसी भी जगह से चलने लगती है- अपने आप बिना मेरे चलाए - किसी इमारत या गली या सड़क या फुटपाथ या फूलों की झाड़ी या किसी भी परस्पर देखी या अनुभव की गई चीज़ को देखकर या वैसी ही गन्ध को सूंघकर या वैसे ही किसी रंग को या आकार को या स्थिति को देखकर। और ऐसी 'चीज़ों' को कोई कमी नहीं है क्योंकि दिल्ली में ऐसी कोई जगह नहीं होगी ऐतिहासिक या दूसरी जो हमने साथ-साथ न देखी हो, कोई ऐसा अच्छा लगनेवाला पेड़-पौधा या पक्षी नहीं होगा जिसमें हमने दिलचस्पी न ली हो, ऐसी सड़कें या गलियाँ भी कम ही होगी जो हमारी नापी हुई न हों। हम दोनों को ही घूमने और लोगों को और चीज़ों को देखने और उनमें रस लेने और उनके बारे में या दूसरी चीज़ों के बारे में
बात करने और करते जाने और करते जाने का बेहद शौक़ था। अब देखिए यह चलने लगी है। अलबत्ता कुछ क्षण पहले से ही चलने लगी थी। दो दृश्य सामने आ रहे हैं एक के बाद एक।
हम कनॉट प्लेस में सिन्धिया हाउस के बस स्टाप पर खड़े हैं। एक चमचम करती एकदम नई बस हमारे पास रुकती है। ख़ाली-सी है। "आओ चन्दर, इसमें चढ़ते हैं।" "हमारी नहीं है।"
"तो क्या हुआ। पीछे से चढ़कर आगे से उतर जाएँगे। इसके नयेपन का मज़ा लेंगे, उद्‌घाटन करेंगे।" हँसते-हँसते हम शरारती बच्चों की तरह वही करते हैं। दूसरा दृश्य यों है-

नाटक - शिवरात्रि

लेखक - चंद्रशेखर कम्बार

अनुवाद - वीणा शर्मा

पात्र - बिज्जल

(निराश होकर) अरे ऐ बसवा (अपने आप में), सभी सवालों का जवाब जाननेवाला एक ही मित्र था, उसकी आखिरी इच्छा को भी पूरा न कर सकने वाले के पास अब क्या बचा है? तुम लोगों ने देखा न जाते वक्त एक शब्द भी मुझसे नहीं कहा बसवन्ना ने, आँख उठाकर देखा तक नहीं। कल्याण नगरी को अँधेरे में छोड़कर चला गया। शिवरात्रि के घोर अँधेरे में सभी खामोशियों, सभी अज्ञानों को अपने आगोश में लिये घोर अँधेरे को छोड़कर चला गया। (अब मृत्यु ही अनिवार्य रास्ता समझकर मरने के लिए तैयार हो जाता है।) बसवा... बसवन्ना, इतने घोर अंधकार में मुझे अकेला छोड़कर चले गए तुम... बसवा... न छू सकने वाले मन-मस्तिष्क, धड़कनों को तुमने छुआ, झकझोरा । तुम्हारे वचन-साहित्य में ऐसी ताकत है। लेकिन यह भी सत्य है कि चुगलखोरी, धोखा, फरेब, षडयंत्र में इससे भी ज्यादा ताकत है, रफ्तार है बसवन्ना ! चुगलखोरों की बातों में आकर आँख-नाक मूँदे तुम्हें देख नहीं पाया। आँख होते हुए भी ठोकर खाई। अब हजारों यादों की बारात खड़ी है मेरे सामने। किसी के चेहरे पर मुस्कुराहट नहीं है। सबमें मेरा अहंकार गरजता हुआ मेरे मन को और सता रहा है।. ...देखो मृत्यु के काले बादलों के पीछे पहचान का एक भी चेहरा दिखाई नहीं दे रहा है। सब कुछ अस्पष्ट आकार बनकर सरकते-सरकते गायब हो रहे हैं। कोई भी जाननेवाला चेहरा नहीं दिखाई दे रहा है। सिर्फ तुम्हारा चेहरा-एक नये कैलास के निर्माण का सपना और ऊर्जा लिए। हँसमुख चेहरा, शुभ्र, साफ चेहरा मुझे कितना सुकून दे रहा है।तुम्हारी इन यादों को सहेजकर पश्चाताप के आँसुओं से धोकर, तुम्हारे पवित्र चेहरे की याद लिए जा रहा हूँ। तुम्हें अब कभी नहीं दुखाऊँगा। इस सत्ता में दिल नहीं है, और संगय्या में करुणा। दोनों की नफरत के बीच खड़ा हूँ।... मेरा पूरा शरीर घावों से भरा है। सभी घावों से मेरा अहंकार बह रहा है। बसवा, मुझे क्षमा कर दो ।... जगदेव-मोल्ली बोम्मन्ना आओ, मैं तैयार हूँ।(इतना कहकर उन्हें बाँहों में लेने के लिए हाथ फैलाकर खड़ा होता है। वे भी एक-एक हाथ से गले लगकर दूसरे हाथ से वार करते हैं। बिज्जल जमीन पर गिरता है, अँधेरा पसरता है।)

नाटक - ***The Last Flight***

लेखक - भूमिका द्विवेदी

पात्र - जॉन

(गिड़गिड़ाते हुए) फ़ादर, मेरी होल लाइफ़ तुम्हारे अहसानों तले दबी रहेगी... पूरी लाइफ़ मैं इसी चर्च के दरवाज़े पर झाड़ू मारूंगा... बस एक बार... एक बार तुम मेरी ऐली को ज़िन्दा कर दो... फ़ादर मैं प्रॉमिस करता हूँ, तुम्हारा स्लेव बनकर पूरी लाइफ़ गुज़ारूंगा... बस एक बार मेरी स्वीट ऐली को मेरे सामने ला कर खड़ा कर दो फ़ादर... मुझे मालूम है तुम मैजिक जानते हो... तुमने आत्मा, प्रेत सब सीख रखा है... मुझे मालूम है, तुम

ज़रूर मेरी ऐली को मुझसे मिला दोगे... वह आधी-अधूरी बात छोड़कर, हंसती-मुस्कुराती कहीं दूर चली गयी... मुझे तड़पता हुआ छोड़ गयी... अपने अभागे बाप को अकेला छोड़ गयी फ़ादर... इसी चर्च के पीछे उसे मेरे सामने मिट्टी में दबा दिया गया... वह मुझे अकेला छोड़ के कैसे जा सकती है फ़ादर... शी वॉज़ माय बेस्ट फ्रेंड... उसने मुझसे कहा था फ़ादर, वह मुझे कभी अकेला नहीं छोड़ेगी... उसने कहा था, वह कभी अपनी ममा जैसा नहीं करेगी... फ़ादर, एक बार मेरी इनोसेन्ट ऐली से मिला दो... जाने वह कहाँ छुप गयी है... तुम्हें जीसस का वास्ता, तुम्हें तुम्हारे मैजिक का, तुम्हारी आर्ट का वास्ता... एक बार मेरी ऐली को मुझसे मिला दो, बस एक बार फ़ादर... सिर्फ़ एक बार... (कहते-कहते जॉन ऐंजिल के पैरों पर गिर कर बिलख-बिलख के रोता है।)

हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे साथी, उदास मौसम के लिए
हम लड़ेंगे साथी, गुलाम इच्छाओं के लिए
हम चुनेंगे साथी, जिंदगी के टुकड़े

हथौड़ा अब भी चलता है, उदास निहाई पर
हल की लीकें अब भी बनती हैं, चीखती धरती पर
यह काम हमारा नहीं बनता, सवाल नाचता है
सवाल के कंधों पर चढ़कर
हम लड़ेंगे साथी

कत्ल हुए जज्बात की कसम खाकर
बुझी हुई नजरों की कसम खाकर
हाथों पर पड़ी गाँठों की कसम खाकर
हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे तब तक
कि बीरू बकरिहा जब तक
बकरियों का पेशाब पीता है
खिले हुए सरसों के फूलों को
बीजनेवाले जब तक खुद नहीं सूँघते
कि सूजी आँखोंवाली
गाँव की अध्यापिका का पति जब तक
जंग से लौट नहीं आता
जब तक पुलिस के सिपाही
अपने ही भाइयों का गला दबाने के लिए विवश हैं

कि बाबू दफ्तरों के
जब तक रक्त से अक्षर लिखते हैं···
हम लड़ेंगे जब तक
दुनिया में लड़ने की जरूरत बाकी है···

जब बंदूक न हुई, तब तलवार होगी
जब तलवार न हुई, लड़ने की लगन होगी
लड़ने का ढंग न हुआ, लड़ने की जरूरत होगी
और हम लड़ेंगे साथी···

हम लड़ेंगे
कि लड़ने के बगैर कुछ भी नहीं मिलता
हम लड़ेंगे
कि अभी तक लड़े क्यों नहीं
हम लड़ेंगे
अपनी सजा कबूलने के लिए
लड़ते हुए मर जानेवालों
की याद जिंदा रखने के लिए
हम लड़ेंगे साथी···

–पाश

मगर यह तो बताओ

घर में टेलीफोन की घंटी बजती है
रसोई से आकर वह टेलीफोन उठाती है
पूछती है आप कौन बोल रहे हैं
उधर से कही गई बात सुनकर,
आपको शर्म नहीं आती ऐसी बात करते
कहकर झल्लाते हुए टेलीफोन रख देती है

टेलीफोन की घंटी फिर बजती है
वह फिर टेलीफोन उठाती है
उधर से कही जा रहीं वही बातें सुनकर
वह गुस्से से भर उठती है
और फोन पर चीखते हुए कहती है
क्या तुम्हारे घर में माँ-बहन नहीं है
बदतमीज कहीं के और टेलीफोन रख देती है

कुछ देर बाद टेलीफोन की घंटी फिर घनघनाती है
वह कुछ देर तक खड़े-खड़े सोचती है
और फिर टेलीफोन उठाती है
उधर से फिर वही आवाज और बातें सुनकर
जरा अपना नाम तो बता
पूछते हुए बुरी तरह चिल्लाकर
टेलीफोन पटक देती है

कुछ समय बाद फिर टेलीफोन की घंटी बजती है
इस बार वह फोन नहीं उठाती

फिर लगतार घंटी बजती जाती है
वह टेलीफोन उठाती ही नहीं

दफ्तर से लौटा पति अपने जूते उतारते हुए
उससे पूछता है क्या हुआ
आज मेमसाहब घर पर नहीं थीं क्या
मेरी उँगलियाँ लगातार फोन से जूझती रहीं
जाती रही घंटी
किसी ने फोन ही नहीं उठाया
वह पति के सामने चाय और घटना
दोनों साथ-साथ रखती है
कौन हो सकता है ऐसा
हाथ से छूटकर
चाय में डूबे बिस्कुट की तरह
पति सोच में डूब जाता है

रात बिस्तर पर पत्नी का सिर
अपनी गोद में रखकर उसके बालों में
उँगलियाँ फेरते हुए पति पत्नी से कहता है,
चलता है यार कुछ लोग होते हैं
जिन्हें ऐसा करने में मजा आता है
और तो ठीक है चलो मान लिया
दिन-भर आज तुम परेशान रहीं
मगर यह तो बताओ
उसने टेलीफोन पर तुमसे कहा क्या-क्या ?

—पवन करण

परदा

एक

परदे के बाहर कभी भी नहीं गिरेंगे
उस स्त्री के आंसू
उसके लिए इतने और ऐसे असह्य
दुःख लिखे हैं
किसी अत्याचारी पुरुष ने

एक स्त्री जीवन को एक स्त्री द्वारा
इस असली ढंग से
जीते हुए दिखाये जाने की अनुमति
दी है
किसी और अत्याचारी ने

नहीं होगा कोई कागज़ गीला,
किताबों में नहीं आयेगी नमी,
कपड़े सूखते रहेंगे और परदे पर
रोती रहेगी
वह औरत बदस्तूर

एक अभिनेत्री करेगी उस स्त्री के
जीवन का अभिनय जो अभिनेत्री नहीं है
और इसके लिए वह अपने चेहरे पर
लायेगी अपनी वास्तविकता वंचनाएं, यह सोचते हुए कि
'मैं जो कर रही हूं,
क्या वह अभिनय है ?'

उस अभिनेत्री का संशय
नहीं दिखेगा परदे पर, वहां दिखाई
देगा
हर पल उसका अभिनय

परदे के दुःख से मत जुड़ो
इसकी कांपती-कौंधती रोशनी को
मत छूने दो अपना हृदय
फिजूल है परदे पर रोती एक
लाचार स्त्री के
आँसू पोंछना...

रोती रहेगी स्त्री परदे के भीतर
और परदे के बाहर इसी तरह शताब्दियों तक
जब तक उसे निर्देश होगा
जब तक मिलती रहेगी अनुमति ।

दो

– उदय प्रकाश

वह लुप्तप्राय जानवर
परदे के भीतर खोजेगा हरी घास
उसे अपने जीवन के लिए चाहिए
कुछ अजनबी कीड़े,
कुछ अजनबी वनस्पतियां

फिर परदे पर दिखाई देगा
लुप्त होता कोई जंगल
और पृष्ठभूमि से आता रहेगा
समय और दृश्य में विलीन होता
एक विलुप्त जाति का संगीत

नाटक - ठोंब्या
लेखक - मकरंद साठे
पात्र - नंदिनी

हो, ग, बाई... हं घ्या, चला... तर, ऐका सोमवारची कहाणी. दर सोमवारी काय होतं? सूर्य उगवतो आणि नवा आठवडा सुरू होतो. दर अंधाराच्या शेवटी दिवस असतोच. असं हे सोमवारचं महत्त्व. अशा सोमवारी फसवाफसवी करू नये. फसवून तर मुळीच घेऊ नये.
अशाच एका सोमवारी शंकर-पार्वती कैलास पर्वतावर बसले होते. पार्वतीनं शंकराला विचारलं, 'महाराज, सर्वांत चांगलं व्रत कुठलं? सर्वांत आधुनिक व्रत कुठलं? मला सांगा, मी सर्वांना सांगेन. इथं बसलेल्या कुणाला खायला-प्यायला वाण नाही; हाल नाहीत, अपेष्टा नाहीत. हे उतणार नाहीत, मातणार नाहीत, घेतला वसा टाकणार नाहीत. उलट, हा वसा मिळावा, म्हणून अजून एखादा वसा करतील. विश्वास ठेवतील, वसा करतील, फसवणार नाहीत, वसा करतील. चातुर्मास आला, आखाडी दशमी आली; गणपतीची पूजा करतील, दुर्वा वाहतील. मोदकांचा नैवेद्य दाखवतील, वर तुपाची धार धरतील. तुमचं पूजन करतील, तुळशीपत्र वाहतील,खिरीचा नैवेद्य दाखवतील. वर तुपाची धार धरतील. नंदीला स्नान घालतील, ब्राह्मणाला निदान computer operator ची नोकरी देतील, बायकोला टू-बाय्-टूची चोळी शिवतील, दहीभाताचा नैवेद्य दाखवतील. वर तुपाची धार धरतील. पण तुम्ही सर्व व्रतांत चांगलं व्रत सांगा, नाही तर मी आणि हे काहीसुद्धा करणार नाही. तशी मला सर्व व्रतं ठाऊक; मी कोणत्या व्रताच्या पुण्याईनं आपल्या पदरात पडले, हेही मला माहीत; पण मला सर्वांत चांगलं व्रत सांगा. श्रम थोडे आणि फळ पुष्कळ, असं एखादं व्रत सांगा. Actually न खेळता, टीव्हीवर जाता-येता बघून, cricket ची मॅच जिंकता येईल, असं एखादं व्रत सांगा.' तेव्हा शंकर म्हणाले, 'जसा नक्षत्रांत चंद्र श्रेष्ठ, ग्रहांत सूर्य श्रेष्ठ, नद्यांत गंगा श्रेष्ठ, काँग्रेसवाल्यांत नरसिंह श्रेष्ठ, तसा या प्रश्नाचा थड अजून, बये, लागला नाही. अन्यथा, स्त्रिये, मी अजून हे काम का बरे करत बसलो असतो? 'वा! सापडले!' असं म्हणून झोपलो नसतो? या जागी, या काली, असे प्रश्न आजपर्यंत सुटले असते, तर तुजला असे मांडीवर घेवोन काम करत बसण्याची मला हौस आहे, का ही पोज सर्वांत कंफर्टेबल आहे, असे तुला वाटते? हा प्रॉब्लेम आहे खरा, अजून न सुटलेला. पाश्चात्त्य संगीत कसे, संपले- संपले वाटोन आपण हुश्श करावे, तोच परत नव्या जोमाने चालू होते? तसेच, हा प्रॉब्लेम सुटला-सुटला, असे वाटोन हुश्श करावे, तोच परत उपटतो. प्रॉब्लेम आहे खरा. परंतु पृथ्वीवरील academicians प्रमाणे, आपणच secretly प्रॉब्लेमशी खेळत न बसता आम्ही सर्वांना मोकळा केला आहे. सहकाराने, स्त्रिये, उद्धार होतो. हा problem न सोडवल्यास तो राजपुत्र कसा poverty line खाली गेला, तसे होवोन सत्यानाश होतो. तेव्हा आधीची व्रते सोडू नका, तुपाची धार सोडू नका, उतू नका, मातू नका, घेतला वसा टाकू नका.' असे म्हणोन शंकरमहाराज आपल्या कामास लागले. तर तसेच आपणही आपल्या कामास लागू या. (कॉम्प्युटर बंद करते. विराम.) बोला...हं... बोला, बोला. (आजूबाजूला बघत) गेले ना सगळे. वाटलंच होतं मला. आता करा बोंबलायला discussion

नाटक - येळकोट
लेखक - श्याम मनोहर
पात्र - मिनाक्षी

तुम्हा दोघींशी मला बोलायचंय (बसते.) सुनंदावैनी, तुम्हीही बसून घ्या. (बसते.) तुम्हा दोघींना महत्त्वाचं सांगायचंय. तुम्ही दुःखी आहात. मीही एक स्त्री आहे. संसारी स्त्री आहे. तुमचं दुःख मी जाणते. दुःखाचे दिवस येतात न् जातात. संसार ही गोष्ट पक्की आणि कायमची आहे. कोट्यवधी वेळा सूर्य उगवले न् मावळले, संसाराची ओढ माणसाची कायम आहे. आता जास्त लांबड न लावता सांगून टाकते; तुम्ही दोघी बँकातनं चांगल्या नोकरीला आहात, कर्ज काढा, धाडस करा, ताबडतोब फ्लॅट घ्या, पटापट हालचाली करा आणि ताबडतोब, आठवड्यात, चार दिवसांत, उद्याच फ्लॅट घ्या न् राहायला जा तिकडे, (सुनंदाला) इथं राहू नका,

(जोर देऊन) इथं राहू नका. एकदा डोक्यावर घराचं कर्ज उभं राह्यलं की भांडणासाठी तुम्हाला वेळच मिळणार नाही. इथं राहू नका. मी माझा एक दृष्टिकोन सांगत्ये. आपला देश आहे विकसनशील. ढेव्हलपिंग नेशन. विकसनशील राष्ट्रात प्रत्येकाला सर्व गोष्टी मिळत नाहीत. कुणाला चांगली नोकरी मिळते, तिला चांगलं घर मिळत नाही. कुणाला चांगलं घर मिळतं तर तब्येत चांगली नसते. डायबेटिस होतो. एखादी बाई चांगली असते तर नवरा दारूडा असतो. नवराबायको, घरदार, नोकरीचाकरी चांगली असते; तर मुलं मटका खेळणारी असतात. दूध चांगलं मिळतं तर चहाची पावडर चांगली नसते. काड्याची पेटी भर्रकन् पेटणारी मिळते तर गॅस नसतो. स्कूटरचा नंबर लागतो तर रोड खराब होतात. श्रावण महिना लागतो, रेडिओवर- टीव्हीवर श्रावणाची व्याकूळ भावगीतं लागतात, तर पाऊसच नसतो. विकसनशील राष्ट्रात असं असतं. तुमच्या नीट ध्यानात यावं म्हणून मुद्दाम लांबड लावत सांगत्येय. विकसनशील राष्ट्रात, ढेव्हलपिंग कंट्रीमधे प्रत्येकाला सर्व गोष्टी मिळत नाहीत हे महत्त्वाचं, हे समजावून घ्यायला हवं. पण विकसनशील राष्ट्रात, ढेव्हलपिंग कंट्रीमधे, अगदी कुणालाच सगळ्या सोयी, सगळी सुखं मिळत नाहीत असं नाही हां. मिळतात; विकसनशील राष्ट्रात, ढेव्हलपिंग कंट्रीमधे, सगळी सुखं, सगळ्या सोयी मिळू शकतात, कुणाला? जो चलाख असेल त्याला. हे समजावून घ्यायला हवे. तुम्ही चलाख व्हा, सगळी सुखं मिळवा, सगळ्या सोयी प्राप्त करून घ्या. आपला देश एखाद्या व्यक्तीसाठी मुद्दाम काही एक करणार नाही. समूहासाठी करेल. ही स्कीम, ती स्कीम. चलाख व्हा आणि राष्ट्राकडून तुमच्या सोयी, तुमची सुखं हिस्कावून घ्यायला शिका. तरुणपणीच चलाख व्हा. सगळं साधून घ्या, स्वतःचं.

<u>नाटक - सं स्वयंवर</u>
<u>लेखक - कृ प्र खाडिलकर</u>
<u>पात्र -रुक्मिणी</u>

त्यांचे दहन झाल्यावर ह्या लतांना नवीन पालवी कां फुटावी? ह्या नव्या कळ्या फुलझाडांवर कशा दिसाव्या? आम्रमंजिरीचे सुगंधी द्रव्य वाहणारा वायु दिमाखानें का फिरू लागावा ? ती मदनमूर्ती जळून खाक झाल्यावर हा वसंतकाळ कसा जिवंत राहिला ? – काय म्हणतां, मी त्यांच्या प्रेमाशी बेइमानी करून शिशुपालाच्या गळ्यांत माळ घालीन म्हणून मजवर सूड उगविण्याकरितां तुम्ही पृथ्वीवर रेंगाळत आहां? – अथवा दुसरें कोणचें कारण असणार? त्यांच्या दहनाची वार्ता ऐकल्यावर मी जर मरून पडलें नाही तर ह्या नव्या कळ्यांनी मला हंसण्याकरिता का फुलू नये? आम्रमंजिरीच्या उन्मत्त गंधाचे विष मला देण्याकरितां ह्या वायूने माझ्याभोवती लपत छपत कां फिरू नये? काळाच्या पोटात अग्निमुखानें ते जसे शिरले, त्याप्रमाणे मीही शिरतें कीं, नाही हें पाहण्याकरिता वसंतानें त्यांच्या मित्रानें टेहळणी कां करू नये ? - करा, खुशाल माझा छळ करा. खरें खरें तुम्हाला सांगतें मी जिवंत आहे, कारण तेही जिवंत आहेत असेंच मला वाटतें. (पडद्यांत कोकिलरव) काय म्हटलेंस कोकिळे, माझ्याप्रमाणेच तुलाही वाटतें म्हणून तूं आनंदानें गात आहेस ? (पडद्यांत कोकिलरव) तुझें हे गाणें म्हणजे आकाशवाणीच मी समजतें; हो श्रीकृष्ण जिवंत आहेत - (पडद्यांत कोकिलरव) आहेत, आहेत, जिवंत आहेत; खरेच गडे ते जिवंत आहेत - (पडद्यांत कोकिलरव) कोठें आहेत म्हणून विचारतेस ? – वेडे; तुला जिवंत आहेत हें समजलें, आणि कोठें आहेंत हैं समजत नाही ? - तुला नाही समजलें, पण मला माहीत आहे कोठें आहेत ते (पडद्यांत कोकिलरव) सांगू म्हणतेस कोठें आहेंत ते? ऐक तर - श्रीकृष्ण जळाला असें हे म्हणतात तरी कसे? श्रीकृष्ण येथे फुललेला मला दिसतो; श्रीकृष्ण माझ्या अंगाला स्पर्श करीत असून त्याच्या अंगाचा सुगंधही मला येतो; श्रीकृष्णाच्या मुरलीचा मंजुळ ध्वनि मला ऐकू येतो; श्रीकृष्ण मग जळेल कसा? - हां हां बरोबर आहे. श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष मदनच आहे, हें मला सांगण्याकरिता मदन- दहनाप्रमाणे श्रीकृष्ण-दहनाची कथा यांनी रचिली असावी! मदनाला शंकरांनी जाळलें, पण प्रत्येक प्राण्याच्या - प्रत्येक वस्तूच्या मनाने त्याला पुन्हा उत्पन्न केलें; श्रीकृष्ण जळाला म्हणून तुम्ही सांगतां, पण मी म्हणतें, तो प्रत्येक मनाचा प्रत्येक वस्तूचा - मालक झाला आहे. मदनाहून त्यांची योग्यता अधिक. मदन मनांत उत्पन्न होतो.ते मनावर अधिकार

चालवितात. जो प्रत्येकाचा स्वामी झाला, तो मला सनाथ केल्याशिवाय कसा राहील? हो हो झालेंच मी सनाथ; ज्या वेळी श्रीकृष्ण जळाला म्हणून तुम्ही मला सांगितलेंत त्याच वेळी मी सनाथ झालें. करणा फुलांनों तुम्ही खुशाल फुला; श्रीकृष्णाच्या यशाच्या फैलावाशिवाय तुम्ही दुसरें तिसरें कोणतें कार्य फुलून करणार? वायो खुशाल वाहा; श्रीकृष्णाच्या गुणांशिवाय दुसरें द्रव्य तुझ्यापाशीं कोणतें असणार? - कोकिळे, खुशाल गा; श्रीकृष्णाच्या लीलाच तू गाणार ना? ये वसंता खुशाल ये; सर्व सृष्टि कृष्णमय झाली आहे, तेव्हां तूंहि कृष्णमयच असला पाहिजेस, आणि श्रीकृष्णाची आनंदाची बातमी तूं सांगणार असला पाहिजेस. (दासी प्रवेश करते.)

<u>दिवाकरांच्या नाट्यछटा</u>
<u>पात्र - कोकिलाबाई गोडबोले</u>

"...मेले हात धुऊन पाठीस लागले आहेत जसे ! काडीइतकेंसुद्धां कार्ट्यांपासून सुख नाहीं!... कस्सें, करूं तरी कसें आतां ! जेवा मुकाट्यानें! नाहीं तर चांगली फुंकणी घालीन पाठींत एकेकाच्या! काय, काय म्हटलेंस गण्या? - मेल्या! मी मोठमोठ्यानें ओरडतें का? ऊं! चूप ! ओक्साबोक्शी रडतो आहे मेला ! जीव गेला? का घालूं आणखी पाठींत? का ग वेणे? गप कां बसलीस? भाकरीवर तूप हवें ? - मेलें माझें तोंड नाहीं धड आतां! बापानें ठेवलें आहे तूप तुझ्या टवळे! तूप पाहिजे नाहीं? हें घे! गप्प ! नाहीं तर आणखी रपके घालीन चांगले ! - मिटलें का नाहीं तोंड ! का अस्सा आणखी ! हात् तुला घातलें चुलींत नेऊन अवदसे ! कोण आहे? कोण हांका मारतें आहे बाहेर? आहेत हो. आहेत! आलें, आलें!- या पोरट्यांच्या गागण्यानें अमळ ऐकू येईल तर ना? लग्न होऊन घरांत आल्यापासून सारखी पाहात आहें, रात्रंदिवस मेला जंजाळ पाठीमागें ! सांडलेंस पाणी ? बाई! बाई ! भंडावून सोडले आहे या पोरट्यांनीं! पाहा, आहे? नीट मुकाट्यानें जेवायचें, त्या मिटक्या रे कशाला वाजवायच्या? थांब!! हा झारा तापवून चांगला चरचरून डाग देतें तोंडाला ! - दळिद्री कारटीं! खाऊन पिऊन मेलीं झाली आहेत पाहा कशीं! मरूं घातली आहेत जशीं! आलांत? आज लवकर येणें केलें? स्वारीचें भटकणे लवकरच संपलें म्हणायचें! रोज उठून तीं मेलीं मंडळे का फंडळें! कर्माचीं करा आपल्या मंडळे ! उद्यां जा तर खरें, कीं हीं सगळीं कारटीं आणून तिथे उभीं करतें अन् पाहतें तमाशा ! - आलें हो, आलें- केव्हांच्या त्या मुरलीबाई हांका मारीत आहेत, तेव्हां अमळ- ऐकलें का? असें घुम्यासांरखें बसायचें नाहीं! संभाळा या कारट्यांना, नाहीं तर मेलीं आग लावून देतील घरादाराला ! - आलें बाई!!"

नाटक - एकच प्याला
लेखक - राम गणेश गडकरी
पात्र - सुधाकर

आता सोड? इतके दिवस दारू प्याल्यावर? वेड्या, इतके दिवस कशाला? एकदाच प्याल्यावर दारू सोड? वेड्या, दारू ही अशी तशी गोष्ट नाही की, जी या कानानं ऐकून त्या कानानं सोडून देता येईल! दारू ही एखादी चैनीची चीज नव्हे की, शोकाखातर तिची सवय आज जोडता येईल! आणि उद्या सोडता येईल. दारू हे एखादं खेळणं नव्हे की, खेळता खेळता कंटाळून ते उशापायथ्याशी टाकून देऊन बिनधोक झोप घेता येईल! अजाण मुला, दारू ही शक्ती आहे, दारू हे काळाच्या भात्यातलं अस्त्र आहे, दारू ही जगाच्या चालत्या गाड्याला घातलेली खीळ आहे. दारू ही पोरखेळ करता येण्यासारखी एखादी क्षुद्र वस्तू असती तर तिच्याबद्दल एवढा गवगवा जगात केव्हाच झाला नसता ! हजारो परोपकारी पुरुषांनी आपल्या देहाची धरणं बांधली तरीसुद्धा तिचा अखंड ओघ चारी खंडांत महापुरानं वहात राहिला, वेदवेदांताची पानं जिच्या ओघावर तरंगत गेली, कठोर शक्तीचे मोठाले राजदंड जिच्या गाळात रुतून बसले ती दारू म्हणजे काही सामान्य वस्तू नव्हे! दारूची विनाशक शक्ती तुला माहीत नाही! मुसळधार कोसळणाऱ्या पावसात टिकाव धरून राहणारी इमारत दारूच्या शिंतोड्यांनी मातीला मिळेल! दारूगोळ्यांच्या तुफानी माऱ्यासमोर छाती धरणारे बुरूज या दारूच्या स्पर्शानं गारद होऊन पडतील ! फार कशाला पूर्वीचे जादूगार मंतरलेले पाणी शिंपडून माणसाला कुत्र्या-मांजरांची रूपं देत असत, ही गोष्ट तुझ्यासारख्या शिकल्यासवरल्या आजच्या पंडिताला केवळ थट्टेची वाटेल; पण रामलाल, दारूची जादू तुला पाहावयाची असेल तर वाटेल तो बत्तीसलक्षणी आणि सर्वसद्गुणी पुरुष पुढे उभा कर आणि त्याच्यावर दारूचे चार थेंब टाक; डोळ्यांचं पातं लवतं न लवतं तोच तुला त्या मनुष्याचा अगदी पशू झालेला दिसू लागेल! अशी दारू आहे समजलास?

नाटक - सं शारदा
लेखक - गो ब देवल
पात्र - दीक्षित

(स्वगत) या क्षेत्री येऊन जवळ जवळ महिना होता आला. इतक्या अवधीत आम्ही काय केलं? का, पुष्कळ केलं, पहिली गोष्ट ही की व्यवस्थित वळण बांधून येथील सरकारी हेरंबमहालात आमच्या श्रीमंतांची स्थापना केली. काही माहिती मिळवून, त्या माहितीला थोडं धोरण जुळवून आणि त्यात आमची स्वतःची कल्पना मिसळून श्रीमंतांना शोभण्यासारखं व लोकांना पटण्यासारखं एक नाव शोधून काढलं. ते कोणतं? तर मंडलेश्वरकरांचे सापत्न बंधू जयधुंडिराज. या क्षेत्री आल्या दिवसापासून, विद्वान, शास्त्री, हरिदास, पुराणिक, अशांची योग्य संभावना; तसेच दानधर्म, अन्नसंतर्पण, इत्यादिकांची गर्दी सुरू ठेवल्यानं श्रीमंतांच्या औदार्याचा चोहीकडे डंका झडू लागला. हे सर्व झालं, पण मुख्य कार्यासंबंधानं काय झालं? का बरं! त्या दिशेनंही या दीक्षितांच्या युक्तीचा जयच होत चालला आहे. श्रीमंत वृद्ध नसून तरणे आहेत, असा लोकांचा ग्रह केला. रूपानं, वयानं, आपल्याला हवी त्यापेक्षा रेसभर जास्त अशी कांचनभट म्हणून एका लोभी भिक्षुकाची लग्नाची मुलगी आहे, असा शोध काढला. त्या कांचनभटाचे स्नेही सुवर्णशास्त्री बेट्यांचे गुण पाहून मग नावे ठेविलेली दिसतात. त्या शास्त्र्यांच्या मध्यस्थीनं कांचनभटाचं मन वळविण्याचं कारस्थान सुरू केलं आहे. मुलगी दिल्यास हुंडा म्हणून पाच हजार; शिवाय त्या भटाला श्रीमंताचे श्वशुर म्हणून वंशपरंपरेने मोठीशी तैनात करून देऊ असं अमिष दाखवायला सांगितलं आहे. हजार वाटांनी ही गोळी चुकायची नाही. इकडे श्रीमंतांना तर लग्नाचं जसं काही वेडच लागलं आहे. अष्टौप्रहर लग्नाशिवाय गोष्ट नाही दुसरी. त्यांचा प्रश्नही लग्नच, आणि उत्तरही लग्नच (दूर पाहून) हे सुवर्णशास्त्री कांचनभटाच्या घराकडून आले. बहुधा यश संपादन करून आले असतील. चला, त्यांनाच विचारू म्हणजे झालं. (जातो.)

नाटक - तू वेडा कुंभार
लेखक - व्यंकटेश माडगुळकर
पात्र - इजाप्पा

मी म्हनीन. आन ऐकायला बी लावीन. पर ती वेळ नगं याला. काय जगाला तमाशा दाखवायचा? एकदा बोलू लागलो म्हंजे मला राग न्हाई आवरत. डोक्यात धडाका पेटतो. हे हात असलं... (जुन्या आठवणीत शिरत) एवढा होता, असाच पाप्याच्या पितरासारखा... लोक म्हनायची इजाप्पा, अरं तुज्या पोटी ह्यो असला पोरगा कसा जलमला? असलं दांड झाड हे आन् फळ असं बारकं का पडलं? कितीबी खोड्या केल्या तरी त्याची आई मला बोट न्हाई लावू द्यायची पोराच्या अंगाला. म्हणायची, राग आला असला तर मला मारा. एकदा काय झालं जे सकाळी हे पोरगं गेलं बाहेर कुठं पोरासंगं, ते दिवस मावळला तरी पत्त्या न्हाई... घरी सण होता बेंदराचा... वाड्या फिरलो, वस्त्या फिरलो, तळी-हिरी हुडकल्या… आन् हे पोरगं घावलं कुठं? मुसलमानाच्या पोराबरुबर मासं मारायला गेलं होतं बलवडीच्या नदीला. मुकाट्यानं कान धरून घरी आनला अन् रागाच्या भरात दंडाला धरून लाथ घातली ! हितंच. तसं आढ्याइतकं उच् उडून थ्या तिकडं पडलं. पडलं, ते गप. हूं न्हाई चूं न्हाई. कणणं न्हाई, वरडनं न्हाई. तब्बल घटकाभर पोरगं सुदीतनं गेलं. सगळं गाव जमलं. अंगारं धुपारं सगळं झालं. (थोडं थांबून)... लोक थुकलं माज्या तोंडावर. लेका इजा, आपल्या हातानं पोटचं पोरगं मारलंस. त्येच्या आईनं हंबरडा फोडला.. वंचा, त्या वेळी असं वाटलं, धोंड्यावर डोस्कं आपटून मरावं... त्यातनं जगलं पोर. पर पांडुरंगानं धडा दिला... बारा वर्षं होऊन गेली. तवापासनं चार बोटानं ग शिवलं न्हाई पोराला, का वाकडा शब्द बोललो न्हाई. त्याच्या आईच्या गळ्यावर हात ठिवून आन घेतलीय मी. कसा बोलूं त्येला ? कसा दुखवू? त्येच्या शिव्या ओव्या मानल्या पाहिजेत बाई. त्यानं लाथ मारली तरी पाय दुखवला का रं बाबा म्हणून त्योच पाय ह्या म्हाताऱ्या हातानं रगडला पाहिजे. नवसासायासाचा एकुलता एक पोरगा ह्यो, त्याच्यावरनं मरून जाऊन फिरून जन्माला ईन मी…

नाटक - पळवाटा
लेखक - दत्ता भगत
पात्र - काका

सतीशा काळीज सूपा एवढं झाल्तं ह्या अर्जुन्याचं धाडस पाहून. हत्तीचं बळ संचरलं व्हत मह्या अंगात. म्हन्लं निघाला एक मर्द गडी. तुह्यासारखे वाया गेले. सिकून सवरून वाया गेले पर ह्यानं दावल्ती आशा. पर हॅट ! सतीशा, आर दादासायब सत्तेमागं धावले तवा येडा बावरा झाल्ता जीव मंग भंडारे बी गेला रुपवत्यानं बी तीच वाट धरली. गवई, खोब्रागडे न्हाइ गेले पन निवडनुकीची घाई झाली की पुन्हा सम्दे तिथंच. मुसळधार पावसानं गढी जागच्या जागी इरघळावं तसं झालं सम्द. सगळा चिखोल. सम्दी उमीदच खचली व्हती. पर ह्या नव्या पोरायचं करतुत पाह्यल आन जीवाला उभारी आली. पर हे बी त्याच वाटनं निघायलेत. आरे जा सम्दे जा! हा काका बाबासायबाची आसली अवलाद हय. घ्या तुमीच हारतुरे. पडा पाया कोनाच्या पडायचं त. म्या न्हाइ झुकनार ! कोन हाय र तो मला पाचसे रुपये देनार? मंत्री? पालक मंत्री? कोन्हाचा, कोन्हाचा पालक ? मिळव तूच सरदारकी. हा पठ्या मोडल पन वाकणार न्हाई. खबरदार कोनी हात लावंल त ह्या मूर्तीला. तुह्यासारख्या खूनी मानसाची त सावली बी पडू नव्हो. शेवंताला मारलीस तू. एका रांडव पोरीचा जीव घेतलास तू. निघनिघ इथून - हाट, दूर व्हय

(हातवारे करताना काकांचा तोल जातो. सतीशकाकांना सावरण्याचा प्रयत्न करतो. हेमा घाईने पाणी आणते. काका दिवाणावर पाय लांब करतात. उजवा हात उंचावून सतीशच्या मस्तकापर्यंत अर्जुन स्तब्ध. सगळीच पात्रे फ्रीज. त्रिसरणाचे करुणस्वर पार्श्व भागातून ऐकू येऊ लागतात. काळोख होतो.)

<u>नाटक - महानिर्वाण</u>
<u>लेखक - सतीश आळेकर</u>
<u>पात्र - भाऊराव</u>

... तर मंडळी, सांगायचं म्हणजे अशा रीतीने माझा अंत जाहला. भाऊराव नामे एक सद्गृहस्थ भरल्या संसारी किंवा भरल्या ताटावरून उठून गेला.
परलोकवासी जाहला. ...(सुरात)... जिवंतपणी यातना बोलून दाखवता येतात. परंतु एकदा का पंचप्राण कुडीतून गेले की बातच अलाहिदा. यातना फक्त सोसायच्या....(सुरात)... बोलून जरी दाखवल्या तरी कोणास ऐकू जात नाहीत. ऐकू जात नाही, ऐकू जात नाही, कितीही आक्रोश केला तरी कुणी लक्ष देत नाही. कारण काय तर फक्त पंचप्राण नाहीत. भरल्या वृक्षाचे जिवंतपण कशात असते तर ते (सुरात) त्याच्या मुळात आहे. मुळे का एकदा काढून घेतली किंबहुना निर्जीव झाली की सबंध वृक्ष उन्मळून पडण्यास कितीसा अवकाश?... (सुरात)... पण आपले तैसे नाही. तैसे होणे शक्यच नाही. अहो कैसे व्हावे! वृक्ष पडला कुजत, तर कोणी एकत्र येत नाही. पण मानवाच्या देहाला अंत्यसंस्कार लागतो, तो कुणीतरी द्यावा लागतो. त्यासाठी लोक एका पायावर तयार असतात.या म्हटले आहे (सुरात) तूप खाणार त्याला देव देणार... लोक जाळणार तेव्हा आपण जळणार. पुन्हा मेलेल्या माणसाला आत्महत्या वर्ज. जर केली तर लोक म्हणतील भुताटकी. तेव्हा विषय टाळून मी म्हणतो... (सुरात)
आधी प्रपंच करावा नेटका |
प्रसंगी घालावा कुडता फाटका |
होई जरी तो तोटका।
थंडी वाजे ।।
अशी थंडीच काय पण हिवताप झाला तरी प्रपंच केला पाहिजे. कारण जबाबदारीने गृहस्थाश्रम स्वीकारलेला असतो आपण. आमच्या घरात राजाराणीचा सुखाचा संसार चाललेला. हल्लीच्या दिवसात संसारी कमाई म्हणजे फक्त आमच्या एकुलत्या एक पुत्राची. आमच्या नानाची. अरे, आमचा नाना म्हणजे कसा... (सुरात)
पुत्र व्हावा ऐसा गुंडा।
त्याचा तिन्ही लोकी झेंडा ।। पण आज मोठा कठीण प्रसंग आलेला आहे. संसारचक्र अर्ध्यावर सोडून दिले गेल्यामुळे आमच्या संसाराचा झेंडा अर्ध्यावर उतरलेला आहे. अंतसमयी योगच असा की नाना घरात नाही. नाना नाही. नाना घरात नाही. फक्त आमच्या मंडळी घरात. गेलो तरी खरे वाटेना, शेवटी (सुरात)... गुदगुल्या केल्या. अंगी काटा आणला. पण काटा आणून काय उपयोग? मी तर असा मेलेला. जिवंतपणी इतका त्रास तर मेल्यावर किती? तर तात्पर्य म्हणजे... (सुरात)...
असू आम्ही गृहस्थाश्रमी ।
स्वप्न वसे अंतर्यामी।।
यत्न चालू असे जंगी।
नानास भावंड व्हावे
ऐसी हिरवट आशा मनात ठेवून आम्ही प्राण सोडलेला, कारण प्रत्यक्ष यमराज हाती निमंत्रण घेऊन उभा. आम्ही यमराजाला परतून लावण्याचा आटोकाट प्रयत्न केला, प्रसंगी त्यास गुदगुल्याही केल्या, पण यम हसैना, परतेना, फक्त रेडा हंबरला, तत्क्षणी हृदयात चर... झाले. (पेटीवर उदास सूर) कसले काय अन् फाटक्यात पाय. रक्तदाब वाढण्याचे निमित्त झाले आणि पहाटे आमचे प्राणोत्क्रमण झालेले आहे. (सुरात)... मी तर निघून गेलेला किती प्राणोत्क्रमण नाना परगावी गेलेला.

१७

कुठे कुणाच्या आधाराने जगत
राहतात माणसं
जगण्यासारखं काही आहे म्हणत
आत्मतृप्त सावल्या वावरतात
यांच्या रूपाने.
किती दुखवून गेलेले हवेसे
वाटणारे ओळखीचे चेहरे
आभाळासारखा धीर कोणी देत नाही
तेही आज परके.
मी पहात असते सतत मला
एका न संपणाऱ्या
अंधाऱ्या वाटेवर
किती मुक्त हसत असतात
तेव्हा लोक, नाकारलेल्या
बध्यड सुखांसारखे.
कळत नाही कोणत्या व्याकूळ
आठवणी धडका देत असतात
मनावर सागरी लाटेसारख्या
तसा सगळाच प्रवास
कायम तहाची पांढरी निशाणं
फडफडत ठेवणारा भोवती.
सतत चालतो आणि कुठेच
पोचत नाही आपण
पायांना गती
इथलीच कोडगी.

मी थकून गेलेय किती
अगतिक हे देह-मनाचे
अपार भिजलेपण.
पुरात वाहून गेलेल्या उजाड
गावासारखी मी,
मलाही माहीत आहे
दिव्यावर जमणाऱ्या काजळीसारखे
रातोरात तर छातीत
दाटत नसते सुनेपण.
माझ्या सहज स्पर्शानेही
किती दुखावतात आज
जुने दिवस.

— अनुराधा पाटील

तक्ता

अननस आई इजार आणि ईडलिंबू
उखळ ऊस आणि एडका
सगळे आपापले चौकोन सांभाळून बसलेत

ऐरण ओणवा औषध आणि अंबा
कप खटारा गणपती आणि घर
सगळ्यांच्या स्वताच्या मालकीच्या जागा आहेत

चमचा छत्री जहाज आणि झबलं
टरबूज ठसा डबा ढग आणि बाण
सगळे आपापल्या जागी ठाण मांडून बसलेत

तलवार थडगं दौत धनुष्य आणि नळ
पतंग फणस बदक भडजी आणि मका
यांचा एकमेकाला उपद्रव होण्याची शक्यता नाही

यज्ञ रथ लसूण वजन आणि शहामृग
षटकोन ससा हरिण कमळ आणि क्षत्रिय
या सगळ्यानाच अढळपद मिळालंय

आई बाळाला उखळात घालणार नाही
भडजी बदकाला लसणाची फोडणी देणार नाही
टरबुजाला धडकून जहाज दुभंगणार नाही

शहामृग जोपर्यंत झबलं खात नाही
तोपर्यंत क्षत्रियपण गणपतीच्या पोटात बाण मारणार नाही
आणि एडक्यानं ओणव्याला टक्कर दिली नाही

तर ओणव्याला थडग्यावर कप फोडायची काय गरजाय

—अरुण कोलटकर

भीमराव मेश्रामला संध्या देशपांडे फारच आवडते
असे सांगत तो म्हणाला–
काशीला इंटरव्ह्यूला जाताना संध्यांची ओळख झाली
आणि प्रथम तिने माझा हात दाबला.
□□
नंतर आम्ही फिरलो गंगा नदीच्या काठावरील विश्व हिन्दू सम्मेलनात
आणि सोबतच होतो एका धर्मशाळेत
काशीची देवालयं फिरल्याबर संध्या शुद्ध मराठीत
देवादिकांच्या भ्रामक कथा आत्मविश्वासानं सांगायची
आणि गडद रात्र होताच माझ्याकडे सरकायची.
□□

संध्याचे नाजूक तप्त ओठ माझ्या मानेवर असायचे

तिच्या शरीराचा शुद्ध तुपाचा उग्र वास माझ्या नसानसांत

□□

भीमा मेश्राम विश्वासाने पुढे सांगू लागला–

आताही मी तिच्या घरी जातो

तिचा बाप, भाऊ खाकी ढोलमी हाफपॅण्ट घालून बाहेर जायला निघाले की,

संध्या देशपांडे शंकरजीच्या पिंडीवरील लिंगाची पूजा करीत असते तेव्हा.

□□

मी दिसताच ती शोभा जोशीसारखी सुरेख स्मित करते

आमच्या गप्पा झाल्यावर

मराठवाडा विद्यापीठाला डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांचे नाव द्या

असे ओरडणाऱ्या माझ्या ओठांचं ती दीर्घ चुंबन घेते.

□□

मी प्यायला पाणी मागतो तेव्हा ती वेगळ्याच ग्लासात पाणी देते

आणि चटकन धुवायला टाकते·

हा प्रश्न मला नेहमीच असतो.

□□

मी जायला निघतो तेव्हा संध्या स्वतःच्या ओठावरून

जीभ फिरवित असते

धुवायला टाकलेल्या काचेच्या ग्लासाचं

व तिच्या जीभ फिरविणाऱ्या ओठांचं

कोडं मला आत्तापर्यन्त उलगडलेलं नाही

□□

पण काहीही असो तिच्याकडून येताना मात्र

बाबासाहेबांचा गजर माझ्या मेंदूत सारखा सुरू असतो

– लोकनाथ यशवंत